स्वधर्म का पालन करना है। चौथे अध्याय के अनुसार स्वधर्म का विधान स्वयं श्रीभगवान् ने किया है। देह के स्तर पर स्वधर्म को वर्णाश्रमधर्म कहते हैं, जो अध्यात्म का प्रथम सोपान है। इस वर्णाश्रमधर्म (प्राप्त देह के विशिष्ट गुणों पर आधारित स्वधर्माचरण) से मानव-संस्कृति का श्रीगणेश होता है। अस्तु, वर्णाश्रमधर्म के अनुसार किसी भी कार्यक्षेत्र में स्वधर्म का आचरण करने से उत्कृष्ट गौरवान्वित जीवन की प्राप्ति हो सकती है।

8.2

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।३२।।

यदृच्छया च=और अपने आप; **उपपन्नम्**=प्राप्त हुए; **स्वर्ग**=दिव्य लोक के; **द्वारम्**=द्वार रूप; **अपावृतम्**=खुले हुए; **सुखिनः**=सुखी; **क्षत्रियाः**=क्षत्रिय; **पार्थ**=हे पृथापुत्र; **लभन्ते**=प्राप्त करते हैं; **युद्धम्**=युद्ध को; **ईदृशम्**=इस प्रकार के।

अनुवाद

हे पार्थ! वे क्षत्रिय सुखी हैं, जिन्हें इस प्रकार के युद्ध का अवसर अपने आप प्राप्त होता है, क्योंकि यह तो स्वर्ग के खुले हुए द्वार के समान है।।३२।।

तात्पर्य

'इस युद्ध में कुछ भी श्रेय की प्राप्ति होती नहीं देखता हूँ। यह शाश्वत् नरक-वास का ही कारण सिद्ध होगा,' ऐसा कहने वाले अर्जुन के व्यवहार की जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण निन्दा कर रहे हैं। अर्जुन के ये वाक्य अज्ञान प्रेरित ही थे। वह स्वधर्माचरण करते हुए भी अहिंसा का पालन करना चाहता था। किन्तु एक क्षत्रिय के लिए युद्धभूमि में स्थित होकर अहिंसा का पालन करना तो मूर्खों का ही दर्शन होगा। 'पराशर स्मृति' में व्यासदेव के पिता महर्षि पराशर ने कहा है:

क्षत्रियो हि प्रजारक्षण शस्त्रपाणिः प्रदण्डयन्।
निर्जित्य परसैन्यादि क्षितिं धर्मेण पालयेत्।।

'सभी क्लेशों से प्रजा का संरक्षण करना क्षत्रिय का धर्म है। अतः धर्म-व्यवस्था के लिए आवश्यक होने पर वह हिंसा करे। विपक्षी सेना को परास्त कर उसे धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करना चाहिये।'

इन सब पक्षों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि अर्जुन के लिये युद्ध से उपरत होने का कोई युक्तिसंगत कारण नहीं है। यदि वह शत्रु-विजय करने में सफल रहा तो राज्योपभोग करेगा और यदि युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गया तो उन उच्च लोकों में प्रविष्ट हो जायगा, जिनके द्वार उसके लिये खुले हुए हैं। इस प्रकार दोनों ही अवस्थाओं में युद्ध उसके लिये कल्याणकारी सिद्ध होगा।

9.2

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।३३।।

अथ=अतः; **चेत्**=यदि; **त्वम्**=तू; **इमम्**=इस; **धर्म्यम्**=धर्ममय; **संग्रामम्**=युद्ध